ऊसर (2001)

अजित कुमार

ऊसर (2001)

हिन्दी के प्रमुख कवि अजितकुमार के इस नव्यतम कविता संग्रह में उनकी काव्य- प्रतिभा की मात्र एक और किस्त ही प्रमुख नहीं है बल्कि इसके बरक्स उनकी काव्य- प्रतिबद्धता को गहराई से इंगित करती कविताएँ यहाँ मौजूद है। 'कविता की भी दुनिया है अपनी' की स्वीकारोक्ति से सराबोर इन कविताओं के माध्यम से अजितजी ने कुछ 'आतुर निवेदन' किए है जो प्राय: संवादों भाषा की सटीक नियुक्ति, मेलों, बच्चों की अनुरागी छटाओं और कवि के बाल-मन की सहज जिज्ञासाओं के बीच रहते और बहते हैं। 'ऊसर' की कविताएँ इतनी अधिक जीवनमयी हैं कि इनमें अनेक बार कवि का जीवन कविता के बाहर झांकता प्रतीत होता है और यही इनकी जीवंतता भी है। इन कविताओं में कवि के उस रूप का प्रकाशन है जिसके अंतर्गत कवि अनवरत जीवन को जीता हुआ काव्य – यात्रा में संलग्न होता है। यहाँ कवि ने सहजता से हिन्दी कवि के उस फैशनपरस्त रूप को नकारा है जिसके वह प्राय: दर्शन और विचार के तथाकथित शीर्ष पर आरूढ़ होकर 'देववाणी' का प्रचार किया करता है। संभवत: इसीलिए कवि अजितकुमार की कविताएँ बड़बोलेपन, आत्मप्रलाप या आत्मअहं की प्रतीति न देकर जीवन की सहज नैसर्गिकता में व्यापक लोक आदर्श को स्थापित करती है।

ये कविताएँ मनुष्य मात्र के सुख: दुख, गुण- दोष और सक्रियता –साक्ष्य को द्रवित-व्यथित करती , भारतीय कवि की रचनाएँ है जो अपनी अदृश्य 'मास्टर की' से उन विषयों (कथ्यों) को खोलता है जो आधुनिक कविता के भूगोल से प्राय: बहिष्कृत है। अभावग्रस्त, वंचित तथा असमता के शिकार लोगों की पक्षधरता में खडी ये कविताएँ उनकी आकांक्षाओं की रणभेरी बनकर तो व्यर्थ' नहीं होतीं बल्कि एक प्रबल निवेदन बनकर समकालीन समय की आलोचना का प्रभावशाली पाठ अवश्य बनती है। कवि की व्यंग्यपरक तथा उदारमना आत्म –टिप्पणियाँ भी यह दृष्टव्य है।

'ऊसर' की कविताओं की पारदर्शी और कुरकुरी भाषा की सहचारिता इन्हें पठनीय बनाती है तथा छंदमुक्त और छंदबद्धता के गहरे सहवास के कारण इनकी अंतर्ध्वनियाँ देर तक हमारे साथ रहती है।

इस संग्रह में कवि ने कोई भूमिका नहीं लिखी। एक पृष्ठ पर ये पंक्तियाँ मुद्रित थीं-

बीत जाय सब बीत जाय
केवल बीते की यादें दोहराने का
मिल जाता अवसर हो
वहीं एक छोटा-सा घर हो।

- ओंकारनाथ श्रीवस्तव

एक अजीब-सी कशमकश है
मेरी दुनिया में
जहाँ कमी हो गई है लोगों की
और मेरी भूमिकाएँ अनंत हैं।

- कीर्ति चौधरी

अगले पृष्ठ पर दर्ज था-
अपने छोटे-से घर में अनंत भूमिकाएँ निभा रहे
बंधु ओंकार और बहन कीर्ति को
सस्नेह समर्पित

ऊसर

‘‘चलो बाबा, चलते हैं मेले में।’’

सुनकर आहत मैं बोला-
‘‘ना बेटे, अब मुझे मेले से क्या काम !
भजूँ हरिनाम
अकेले किसी कोने में।

‘‘फ़सल जो थी,
कट गई,
बच गया है ऊसर !
रखा क्या कुछ भी बोने में !
जाता हूँ भजने हरिनाम
अकेले किसी कोने में।' '

लेकिन उस ऊधमी ने तो कस के
मेरी टाँग ही पकड़ ली,
रटने लगा- "ऊसर !
अरे बाबा, ऊसर !
जो सरोवर, सर, सरिता, सागर
वही ऊसर न !
चलो बाबा, चलते हैं मेले में...

"लौटकर वहाँ से
तुम्हारे ‘ऊसर’ में गढ़ा खोद

जलाशय बनाएँगे,
कई फ़सलें उगाएँगे
मटर, टमाटर, पालक....
तुम्हारी मनपसंद सोया-मेथी !
चलो न, बाबा !' '

आख़िरकार उस हठी ने
मुझे नवमी के मेले से
खुरपी और हँसिया
ख़रीदवाकर ही चैन लिया।

-‘‘ये हैं तुम्हारे लालीपाप !
वो रहा मेरा लालीपाप।''
- सुनकर अगर मैं न हँस पड़ता,
भला और क्या करता !

मूल्य

सुना था कि ऊँचे पहाड़ों के पार
नीली घाटी में एक झरना है
गंधर्व उसीका जल पीते हैं,
उनके गायन पर बेसुध हो
नृत्य करती हैं अप्सराएँ....